उदारीकरण के तीन वर्ष

- डॉ. अरुण कुमार

आज से तीन वर्ष पूर्व विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में केन्द्र सरकार बनाने वाले दल ने अपनी अलगत सरकार को तो स्थापित कर लिया तथा सत्ता के समीकरण को सन्तुलित करते हुए स्वयं के अस्तित्व को बचा लिया है। परंतु क्या यह संतुलन हमें आर्थिक दृष्टि से संतुलित कर पाया है? क्या इससे विकास में वृद्धि हुई? क्या यह हमें गरीबी के दुश्चक्र से निकाल पाया? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर हमें आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाने के तीन वर्ष बाद खोजने होंगे।

जहाँ तक उदारीकरण का प्रश्न है तो यह किसी भी अर्थ-व्यवस्था के क्रमशः विकसित होने का परिणाम है। व्यापार चक्र के उतार-चढ़ाव की भाँति सम्पूर्ण व्यवस्था में भी परिवर्तन होता है। विश्व की विभिन्न अर्थ-व्यवस्थाओं में ऐसे परिवर्तन सदैव होते रहे हैं बात मात्र व्यवस्था की ही नहीं है बल्कि इसके दृष्टिकोण की भी है। यह देखना होगा कि उदारीकृत अर्थ-व्यवस्था में हम कहाँ तक सफल हो सके हैं। उदारीकरण की प्रक्रिया अभी जारी है तथा इसके पूरे परिणाम कुछ समय बाद ही सामने आ पायेंगे, परंतु हम इतना आगे अवश्य बढ़ चुके हैं कि पीछे मुड़कर देखें और यह जानने की कोशिश करें कि हम कहाँ थे और कहाँ आ गये।

यह दावा किया जा रहा है कि 1991 में जो अर्थ-व्यवस्था विनाश के कगार पर पहुँच चुकी थी उसे स्थायित्व प्रदान कर दिया गया है तथा सुरक्षित एवं स्थायी समृद्धि की आधारशिला डाल दी गयी है। समष्टि स्तर (MACRO LAVEL) पर संतुलन तथा स्थायित्व के दो पहलू हैं। पहला आंतरिक- जो मूलतः राजकोषीय घाटे तथा अर्थ-व्यवस्था में स्फीतिक प्रवृत्तियों से जुड़ा होता है तथा दूसरा बाह्य- जो भुगतान संतुलन से संबंधित है। 1990-91 में दोनों ही पक्ष बहुत कमजोर थे तथा सुधार के लिए उठाये गये कदम दोनों असंतुलनों को ठीक करने के लिए थे।

1994-95 के बजट से यह बात पूरी तरह साबित हो गयी है जो पिछले कुछ समय से स्पष्ट होती जा रही थी कि आंतरिक संतुलन को हम अभी तक ठीक नहीं कर पाये हैं। यह सत्य है कि केन्द्रीय सरकार का राजस्व घाटा पिछले तीन वर्षों में निरन्तर बढ़ता रहा है तथा गत वर्ष में यह सकल घरेलू उत्पाद के 4.2% तक पहुँच गया। दीर्घकालिक राजकोषीय स्थायित्व की दृष्टि से यह राजस्व घाटा बहुत महत्वपूर्ण है। पहले दो वर्षों में राजकोषीय घाटे में जो कमी हुई थी वह मूल रूप से सरकार के पूँजीगत व्यय में कटौती के कारण थी। पूँजीगत व्यय में कमी स्वयं में चिंताजनक बात है जो भविष्य के उत्पादन तथा समृद्धि के अवसरों को संकुचित कर देती है। पिछले कुछ वर्षों में मुद्रा

उदारीकरण की नीति कहीं गरीबी के दुश्चक्र को व्यक्ति के स्तर से उठाकर राज्य के स्तर पर तो नहीं ला रही है?.....।

स्फीति कुछ हद तक सीमित रही जो मूलतः अच्छे मानसून के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र के बेहतर उत्पादन पर निर्भर करती है। परंतु यह भी स्पष्ट है कि मुद्रा स्फीति नियंत्रण में नहीं है तथा मूल्यों में वृद्धि पिछले दशकों की अपेक्षा अधिक है। खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि से निर्धन वर्ग का आघात पहुँचा है। इस प्रकार कृषि क्षेत्र में मजदूरी वास्तविक अर्थों में कम हो गयी है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में निर्धन वर्ग की कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं क्योंकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को भी संकुचित किया जा रहा है। सार्वजनिक आधारभूत सेवाओं में कमी आ रही है। स्थायित्व लाने के उपायों से आंतरिक संतुलन तो नहीं प्राप्त किया जा सका लेकिन निर्माणी उद्योग में मंदी की स्थिति अवश्य आ गयी। 1992-93 का प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (Net National Product) वास्तविक अर्थों में 1990-91 के स्तर पर ही बना रहा। 1991-92 तथा 1992-93 में प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय वास्तविक अर्थों में 1990-91 से कम था। 1993-94 के अंतिम आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं है परंतु उपलब्ध प्रवृत्तियों से पता चलता है कि इसमें गत वर्ष की अपेक्षा सुधार होने की संभावना नहीं है यदि सुधार होंगे भी तो इतने कम कि इसे महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता।

विनियोग तथा बचत की दरों में भी कमी आयी है। 1990-91 के सकल घरेलू उत्पाद का 27.4 प्रतिशत पूँजी निर्माण था जो 1992-93 में घटकर 24.5 प्रतिशत रह गया। बचत की दरों में भी कमी आयी है, जो 23.8% से घटकर 22.5% रह गयी तथा अनुमान किया जाता है कि 1993-94 में 21 प्रतिशत से भी कम होगी। 1992-93 में घरेलू बचत में भी कमी आयी है जो मात्र 17 प्रतिशत रह गयी। कृषि तथा उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में कुल विनियोग दर कम हो रही है। उद्योग में 1991-92 से ही मंदी की स्थिति विद्यमान है तथा राजकीय विनियोग में कमी

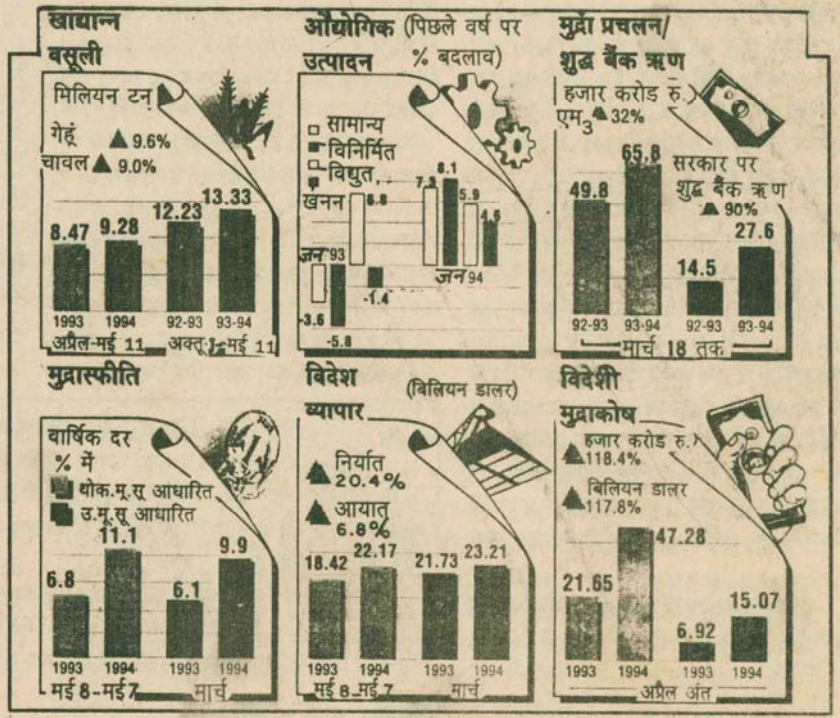

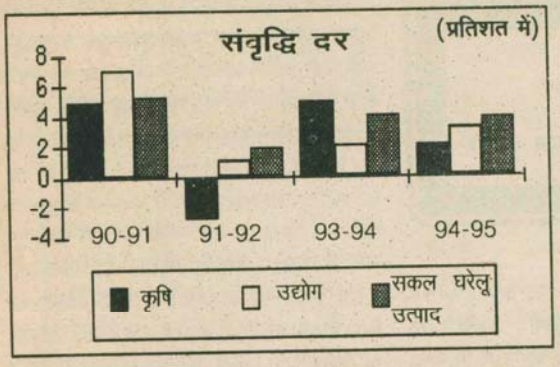

ने इसे बढ़ाया है। राजकीय व्यय में राजस्व प्रकृति के व्यय की अधिकता है जो उद्यमियों को हतोत्साहित करती है। उच्च ब्याज दर ने सरकारी ऋणों को अधिक आकर्षक बना दिया है तथा परिणामस्वरूप सरकारी तथा अन्य प्रतिभूतियों में बैंकों का विनियोग अप्रैल, 1993 के 37% के स्तर से बढ़कर जनवरी, 1994 में 41% तक हो गया जबकि बैंक निक्षेपों की तुलना में बैंक ऋणों में कमी आयी।

गत दो वर्षों की औद्योगिक मंदी का परिणाम यह हुआ कि इस वर्ष अधिक व्ययों तथा बढ़े हुए घाटे के बजट को अर्थ-व्यवस्था के पुनर्स्थापन हेतु न्यायोचित माना गया जबकि वास्तविक अर्थों में सार्वजनिक पूँजीगत व्यय पुनः कम किया गया। हाल ही में पुनरुत्थान का किया गया दावा बहुत छोटे क्षेत्र के संदर्भ में है। पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों तथा वृहद् स्तर पर वस्तुओं के उद्योगों में उत्पादन कम हुआ है। परिणामस्वरूप औद्योगिक संवृद्धि के आँकड़े यह बताते हैं कि अप्रैल, 1993 से जनवरी, 1994 तक औद्योगिक संवृद्धि गत वर्ष से भी कम थी।

भारतीय रिजर्व बैंक के पास विदेशी मुद्रा कोष में पर्याप्त धन उपलब्ध है तथा पिछले तीन वर्षों में लगातार अच्छी फसल हुई है फिर भी औद्योगिक क्षेत्र में मंदी है। यह स्पष्ट है कि मंदी का कारण सरकार द्वारा सार्वजनिक विनियोग में की गयी कमी है। आधारभूत उद्योग पर व्यय बहुत कम किया जा रहा है तथा 1990-91 एवं 1993-94 के मध्य केन्द्रीय बजट में वास्तविक अर्थों में आधारभूत उद्योगों हेतु व्यय बहुत कम हुआ है। ऊर्जा के क्षेत्र में 21%, यातायात के क्षेत्र में 38% तथा सूचना संप्रेषण के क्षेत्र में 84% की कमी आयी है। चालू विनियोग, उत्पादन एवं भावी समृद्धि के दृष्टिकोण से आधारभूत उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः राजकोषीय वितरण की दोषपूर्ण नीति एवं समस्या का ऐसा तदर्थ उपचार जो भविष्य में और अधिक समस्या को जन्म देगा, व्यर्थ है।

अर्थ-व्यवस्था में कृषि क्षेत्र से स्थायित्व अवश्य प्राप्त हुआ है परंतु इसमें भी कमी स्पष्ट है। 1990-91 तथा 1993-94 के मध्य कृषि उत्पादन में वृद्धि 1.5% प्रतिवर्ष की दर से हुई है जो 1990-91 के पूर्व की अवधि के 3% की औसत दर से आधी है। स्पष्ट है कि केवल अच्छा मानसून ही कृषि में अपेक्षित वृद्धि नहीं दे सकता बल्कि हमें कृषि के आधुनिकीकरण, उन्नत बीजों के प्रयोग, कीटनाशकों तथा उर्वरकों के प्रयोग पर भी ध्यान देना होगा। भूमि की घटती उर्वरा शक्ति को बचाना होगा तथा फसलों के अनुक्रम में परिवर्तन लाना होगा। वर्तमान सरकार के पास उपरोक्त विषयों से संबंधित कोई स्पष्ट कृषि नीति नहीं है तथा यह सरकार कृषि क्षेत्र में मूल रूप से मूल्य एवं माँग अभियांत्रिकी का सहारा ले रही है। कृषि क्षेत्र में भी विनियोग निरंतर कम हो रहा है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अप्रवासी भारतीयों के विनियोग को बढ़ावा दिया जा रहा है तथा इस प्रकार विदेशी पूँजी को आकर्षित करने में सरकार को सफलता मिली है। परंतु ऐसे समस्त विनियोग सेवा क्षेत्रों तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग आदि ऐसे क्षेत्रों में हो रहे हैं जहाँ कम विनियोग की आवश्यकता है। आधारभूत उद्योगों हेतु विदेशी पूँजी को आकर्षित करने में हम सफल नहीं हो पाये हैं।

रोजगार के क्षेत्र में भी स्थिति निराशाजनक है। बेरोजगारों की बढ़ती हुई भीड़ की तुलना में उपलब्ध कराये गये रोजगार के अवसर बहुत कम हैं। निजी क्षेत्र में 80 दशक से ही रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। उद्योगों की संरचना में जो समायोजन हो रहा है उससे लघु उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है तथा वहाँ भी रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे हैं।

वाह्य क्षेत्र में इस सरकार की उपलब्धि को महत्वपूर्ण माना जाता है तथा यह भी माना जाता है कि विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि हुई। यह वृद्धि आयात प्रतिस्थापन अथवा निर्यात वृद्धि के कारण नहीं है बल्कि दूसरे देशों में अंशों तथा अन्य प्रतिभूतियों में विनियोग करने की विश्व व्यापी प्रवृत्ति का परिणाम है। 1993-94 में इस प्रकार का भारी विनियोग हुआ परंतु भारत को इसका बहुत कम लाभ मिल पाया। इससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में रुपये की स्थिति और खराब हुई। यह भी विचारणीय विषय है कि इस प्रकार का पूँजीगत विनियोग स्थायित्व नहीं रहने देगा तथा दीर्घकाल में इसकी लागत बहुत अधिक होगी। निर्यात में वृद्धि हाल में दर्ज की गयी है लेकिन यह 20% वृद्धि के लक्ष्य से बहुत कम है। इसका एक कारण रुपये का अवमूल्यन है। डॉलर की तुलना में रुपया 60% तक सस्ता हो गया। आयात में भी कमी आयी है तथा निर्यात में आई कमी का कारण औद्योगिक मंदी हो सकती है। देश का वाह्य ऋण बढ़ता जा रहा है तथा रुपये के संदर्भ में इस सरकार के कार्यकाल में वाह्य ऋण 73% तक बढ़ गया। तीन वर्षीय अल्पकालिक अवधि में ब्याज का भुगतान बहुत अधिक बढ़ गया तथा कुल आय का 26% ब्याज के भुगतान में व्यय हो जाता है।

इन तीन वर्षों में एक अच्छी बात हुई कि सरकार कर की दरों में बराबर सुधार करती आ रही है। इसके पीछे अवधारणा यह थी कि करों की दरों में क्रमशः कमी के साथ कर चोरी में कमी आयेगी तथा कुल राजस्व में वृद्धि होगी। परंतु ऐसा नहीं हुआ। कर संग्रहण विभागों में व्याप्त अकुशलता एवं भ्रष्टाचार के कारण एक तरफ तो राजस्व में वृद्धि नहीं होती तथा दूसरी तरफ प्रशासनिक लागत में भी कमी नहीं आई। हम सभी राष्ट्र तथा समाज के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं और इन परिस्थितियों में आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण का क्या अर्थ रह जाता है? मानव संसाधन विकास पर होने वाले व्यय को अभी भी महत्व नहीं दिया जा रहा है तथा इसे हम अभी तक विनियोग के रूप में नहीं देख पा रहे हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि इन तीन वर्षों में अर्थ-व्यवस्था में बहुत से परिवर्तन हुए हैं परंतु विदेशी ऋण तथा पूँजी के कारण हम ब्याज के भार से दबे जा रहे हैं। आधारभूत उद्योगों में विनियोग कम हो रहा है जिससे उत्पादन में कमी आयेगी ही। इस प्रकार एक तरफ बढ़ते हुए ब्याज का दबाव तथा दूसरी तरफ उत्पादन में निरंतर कमी हमें गरीबी के दुश्चक्र की ओर ले जा रही है। उदारीकरण की नीति कहीं इस गरीबी के दुश्चक्र को व्यक्ति के स्तर से उठाकर राज्य के स्तर पर तो नहीं ला रही है? ❑

भारतीय उत्खनन विशेषज्ञों की विदेशों में मांग

एशिया तथा अफ्रीका में भारतीय उत्खनन विशेषज्ञों की मांग तेजी से बढ़ रही है। यह सरकार की **राष्ट्रीय खनिज नीति** (NATIONAL MINERAL POLICY) के अनुरूप है। सऊदी अरब ने कुद्रेमुख आयरन ओर कम्पनी लिमिटेड से लौह अयस्क के उत्खनन हेतु परियोजना स्थापित करने के लिए निविदा जमा करने को कहा है।

घाना में इसी प्रकार स्वर्ण के उत्खनन हेतु एक अन्य परियोजना में KIOCL KUDREMUKH IRON ORE CO. LTD. तथा BGML BHARAT GOLD MINES LTD. के वरिष्ठ अधिशासियों के दल ने जाँच-पड़ताल की। इसी प्रकार की एक और परियोजना नाइजीरिया में शुरू की जा रही है।